ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-12* March-2021
Anthology : The Research

राष्ट्रीय आंदोलन में प्रगतिवादी चेतना का उदय (1934–47 की पत्र–पत्रिकाओं के विशेष संदर्भ में)

Rise of Progressive Consciousness in the National Movement (With Special Reference to The Periodicals of 1934-47)

Paper Submission: 03/03/2021, Date of Acceptance: 22/03/2021, Date of Publication: 25/03/2021

नीरज जायसवाल
सहायक प्राध्यापक,
इतिहास विभाग,
शासकीय महाविद्यालय
जैतहरी अनूपपुर म.प्र. भारत

सारांश

वामपंथी विचारधारा के प्रभाव के फलस्वरुप भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं साहित्य सर्जन के क्षेत्र में समाजवादी विचारों का प्रवेश हुआ था। जिसके परिणामस्वरूप 1935 में कांग्रेस समाजवादी दल का उदय तथा साहित्य क्षेत्र में 1935 में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। इन सभी का प्रभाव तत्कालीन पत्रकारिता पर भी पड़ा था। इन पत्र–पत्रिकाओं ने अपने राष्ट्रीय दायित्वों का निर्वहन करते हुए राष्ट्रीय आंदोलन में आम लोगों की भागीदारी को प्रभावपूर्ण तरीके से व्यक्त करते हुये समाजवादी व्यवस्था का पुरजोर समर्थन किया। तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं में जागरण, विप्लव, नया हिंदुस्तान, क्रांति आदि प्रमुख थे। इन पत्रिकाओं ने जहाँ फासीवाद और पूँजीवाद की बुराइयों और दूसरों को बताया, वहीं दूसरी ओर निम्न वर्ग को इनसे मुक्ति का मार्ग भी बताया। निम्न वर्ग के अतिरिक्त स्त्रियों के अधिकार और अपने समाज में पुरुषों के समान दर्जा देने की बात की सशक्त अभिव्यक्ति की गई।

As a result of the influence of leftist ideology, socialist ideas had entered the field of Indian national movement and literature surgeon. As a result of this, the Congress Samajwadi Party emerged in 1935. Meanwhile, the Indian Progressive Writers Association was established in 1935 in the field of literature. All these had an impact on journalism as well. These journals had effectively expressed the participation of common people in the national movement while discharging their national obligations. Apart from this, strongly supported the socialist system, in newspapers and magazines, Jagran Viplav Naya Hindustan Kranti etc. magazines told the evils of fascism and capitalism and others, on the other hand, the lower class also told them the path of liberation from the rights of women and There was a strong expression of giving equal status to men in our society

मुख्य शब्द : फासीवाद, पूँजीवाद, साम्यवाद, समाजवाद, दक्षिणपंथी, वामपंथी।
Fascism, Capitalism, Communism, Socialism, Right Wing, Left Wing.

प्रस्तावना

सन् 1935 से 1950 के मध्य भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में नई विचारधारा अर्थात् कांग्रेस के भीतर ही वामपक्ष का उदय हुआ। इस काल में भारतीय राष्ट्रवाद और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन अपने विभिन्न स्वरूप लेते हुए पूर्ण परिपक्वता को प्राप्त हुए। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में वामपंथी राजनीति का उदय 1917 की रूस की सफल बोल्शेविक क्रांति के पश्चात् हुआ था। वामपंथी राष्ट्रवादी वर्ग–संघर्ष के सिद्धांत के आधार पर राष्ट्रीय आंदोलन में मूलभूत परिवर्तन के समर्थक थे। वामपक्षीय विचारधारा के फलस्वरूप ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर समाजवादी विचारों का प्रवेश हुआ जिसने कांग्रेस की भावी नीति और कार्यक्रमों को प्रभावित किया। इन समाजवादी राष्ट्रवादियों में जवाहरलाल नेहरू, जय प्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, अरूणा आसिफ अली, मीनू मसानी, डॉ0 राममनोहर लोहिया इत्याादि प्रमुख थे। कांग्रेस में समाजवादी दल की स्थापना एवं गठन की प्रक्रिया में जवाहरलाल नेहरू के समाजवादी दृष्टिकोण का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस ने अपने समाजवादी विचारों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के उद्देश्य से 'इण्डियन इण्डिपेन्डेंस लीग' का गठन किया। इस लीग ने देश के युवा वर्ग में उत्साह एवं जागृति उत्पन्न की और ब्रिटिश शासन के विरूद्ध एकजुट होकर संघर्ष करने का मार्ग प्रस्तुत किया।

प्रस्तुत शोध–पत्र में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में वामपक्षी विचारधारा के प्रवेश तथा प्रतिशील आंदोलन पर संक्षिप्त में प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त प्रगतिशील आंदोलन का प्रभाव तत्कालीन पत्रकारिता पर भी पड़ा। इस प्रगतिवादी चेतना को अग्र लिखित बिन्दुओं – पत्र पत्रिकाओं में अभिव्यक्त प्रगतिवादी चेतना, प्रगतिवादी तत्त्वों का समर्थन तथा समाज के शोषित वर्ग की समस्याओं की प्रधानता के अंतर्गत स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

विवेच्य काल के लेखन में भारतीय राष्ट्रीय चेतना में वामपक्षी विचारधारा का प्रभाव प्रखर रूप से प्रकट हुआ। वामपक्षी विचार का प्रभाव भारतीय समाज और राजनीति दोनों पर पड़ा। इस दौरान किसानों और मजदूरों के अनेक संगठन बने। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संगठन पर भी वामपंथियों का प्रभाव और बोलबाला रहा। यही कारण था कि दक्षिणपंथियों सहित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने यह स्वीकार किया कि भारतीय जनता की दरिद्रता और कठिनाइयों की जड़ केवल औपनिवेशक शासन ही नहीं है, बल्कि भारतीय समाज का आंतरिक ढाँचे से भी जुड़ी हुई हैं। इस ढाँचे में आमूल परिवर्तन की आवश्कयता को अनुभव किया गया। राष्ट्रीय आंदोलन पर वामपक्ष का प्रभाव कांग्रेस द्वारा पारित मूल अधिकारों एवं आर्थिक नीति के प्रस्ताव पर स्पष्टतः दृष्टिगत होता है। इन प्रस्तावों को कांग्रेस के 1931 के करांची अधिवेशन में पारित किया गया था। इसके अतिरिक्त 1936 में फैजपुर अधिवेशन के आर्थिक नीति पर पारित प्रस्ताव में, 1936 के कांग्रेस के घोषणा पत्र में, 1938 की राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना में तथा आर्थिक और वर्गीय विषयों पर गाँधीजी के विचारों में हुए परिवर्तन में भी इसकी झलक मिलती है। इसके अतिरिक्त वामपक्ष की और भी उपलब्धियाँ थीं जैसे 'आल इण्डिया स्टूडेंट फैडरेशन' (ए.आई.एस.एफ.), 'प्रोग्रेसिव राइटर्स ऐसोसियेशन' (पी.डब्लू.ए.) तथा 'ऑल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फरेंस' का आयोजन करना। नारी के उद्धार विषयक के लिए वामपक्षी नेता अखिल भारतीय महिलाओं के सम्मेलन में काफी सक्रिय थे।

विश्व में उभरती हुई फासिज्म शक्ति का सामना करने के उद्देश्य से सर्वप्रथम यूरोप में 1935 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई थी।[1] इसी संस्था से प्रेरणा प्राप्त कर इंग्लैण्ड में शिक्षा प्राप्त कर रहे प्रबुद्ध भारतीय साहित्यकारों एवं विद्यार्थियों ने, भारत के लिए भी ऐसी ही संस्था के गठन का प्रयास किया। उन्होंने तुरंत प्रस्तावित संगठन की रूपरेखा बनाकर भारत में अपने मित्रों तथा शुभचिन्तकों के समक्ष भेजीं, जिसका उन्होंने व्यापक रूप से स्वागत किया। परिणामस्वरूप 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' (1935)[2] नामक संस्था का जन्म हुआ। इसने अपने घोषणापत्र में कहा– 'पुरानी संस्कृति के टूट जाने के साथ हमारे साहित्य में हर रोज जीवन की वास्तविकता से हट जाने की एक आत्मघाती इच्छा ने जन्म लिया है।... हमारा समाज जो नया रूप धारण कर रहा है, उसको साहित्य में प्रतिबिम्बित करना और वैज्ञानिक युक्तिवाद की साहित्य में प्रतिष्ठित करना, प्रगतिशील चिन्तनधारा को वेगवती करना यही हमारे लेखकों का कर्त्तव्य है। हम लोग जन साधारण के जीवन से हर प्रकार की कला का मिलाप चाहते हैं, . . . जो हमारे विचार और बुद्धि को साफ करेगा, समाज की व्यवस्था और रीतियों की युक्ति के साथ परीक्षा करके, उस समाज को कर्मशील और नियमशील समाज में बदलने में हमारी सहायता करेगा, उसको हम प्रगतिशील कहकर ग्रहण करेंगे।'[3]

भारत में प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन 1936 में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में लखनऊ में सम्पन्न हुआ जिसमें अनेक भारतीय भाषाओं के लेखकों ने भाग लिया। अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचन्द ने साहित्यकारों से अपील करते हुए कहा कि– 'वे नए विचारों और दृष्टिकोणों के आधार पर ऐसे नए साहित्य का सृजन करें जो सार्थक और सोद्देश्यपूर्ण हो, जिसमें निष्क्रियता का भाव न हो, वरन् आशा और आस्था का संदेश हो।'' साहित्य की महत्ता एवं उसके उद्देश्य पर बल देते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाई का प्रकाश हो, जो हमें गति और संघर्ष की बैचेनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।'[4] आगे उन्होंने साहित्यकारों को उनके कर्त्तव्यों के प्रति सचेत करते हुए कहा– 'अब उनका उद्देश्य मनोरंजन, संयोग–वियोग, नायिका–नायक की कहानी मात्र का निर्माण करना नहीं है, अपितु उन प्रश्नों को उठाना है जिनसे समाज या व्यक्ति प्रभावित होते हैं।'[5]

'प्रगतिशील लेखक संघ' का दूसरा अधिवेशन 1938 में कलकत्ता में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन के घोषणा पत्र में लेखकों के लिए कौन सी प्रवृत्तियाँ प्रतिक्रिया या प्रगति की सूचक हैं स्पष्ट किया गया। इसी प्रकार 'संघ' का तृतीय व चतुर्थ अखिल भारतीय सम्मेलन क्रमशः 1942 व 1943 में हुआ। युद्ध की छाया में होने वाले इन सम्मेलनों में लेखकों ने मानवता के शत्रु फासिस्टों के प्रति तीव्र विरोध भावों को दोहराते हुए साम्राज्यवाद के दमन चक्र की भी कठोर शब्दों में निन्दा की। 'संघ' के चतुर्थ अखिल भारतीय सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए अमृतपद डाँगे ने लेखकों से निवेदन किया कि– 'बाहर आइए और खुली नजरों से देखिए कि किस तरह करोड़ों आदमी शोषण और विपत्ति के गले पड़े रहने पर भी काम करते हैं, लड़ते हैं और आगे बढ़कर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेते हैं। उनको देखिए और यदि आपका हृदय गवाही दे तो उनकी भावनाओं को वाणी दीजिए। . . . जनता की कुवृत्तियों के अनुसार अपनी कल्पना परिवर्तित कीजिए अपनी मानसिक कुवृत्तियों के अनुरूप काल्पनिक जनता मत खड़ी कीजिए। तभी यह साहित्यिक जड़ता दूर होगी।'[6] 'प्रगतिशील लेखक संघ' के आगे भी अखिल भारतीय अधिवेशन होते रहे, जिनमें लेखकों को उनके सामाजिक दायित्व से सतत् परिचित कराया जाता रहा। अखिल भारतीय रूप के अलावा देश भर में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की प्रांतीय, जिला एवं नगर समितियाँ भी गठित हुई। सन् 1947 तक 'प्रगतिशील लेखक संघ' की विविध कार्यवाहियाँ तीव्र गति से चलती रहीं।

पत्र पत्रिकाओं में अभिव्यक्त प्रगतिवादी चेतना

हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास भारत की सामाजिक एवं राजनीतिक जागृति और नव चेतना का प्रेरणाप्रद इतिहास रहा है। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान ही हिन्दी पत्रकारिता का जन्म हुआ था और उसी के अनुरूप उसका विकास भी हुआ था। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जनसाधारण तक स्वतंत्रता का संदेश पहुँचाने में इन हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इन पत्र–पत्रिकाओं ने जहाँ ब्रिटिश भारत की शोषित, पीड़ित जनता की दुःखभरी पीड़ा प्रस्तुत की, वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता आंदोलन की विभिन्न गतिविधियों को प्रस्तुत कर भारतीय जनमानस को स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु आंदोलित एवं उत्प्रेरित करने की महत्ती भूमिका निभाई थी। स्वतंत्रता आंदोलन के इस चरण में प्रकाशित होने वाली पत्र–पत्रिकाओं में 'जागरण', 'हँस', 'मर्यादा', 'विजय', 'अलंकार', 'आज', 'चाँद', 'सरस्वती', 'रणभेरी', 'नया हिन्दुस्तान', 'कल्याण', 'अभ्युदय', 'क्रांति', 'आजादी', 'वीर सेनापति', 'वसुंधरा' इत्यादि प्रमुख थीं।

1935 से 1947 के दौरान पत्रकारिता को प्रेस नियंत्रण, युद्ध जनित वित्तीय संकट एवं कागज की कमी के दौर से गुजरना पड़ा, परंतु इन सभी कमियों के बावजूद हिन्दी पत्रकारिता का विकास अपनी तीव्रतम गति से होता रहा। युद्ध समाचारों तथा स्वतंत्रता आंदोलन में कांग्रेस की नीतियों तथा राष्ट्रीय चेतना के प्रचार–प्रसार हेतु इस काल में सरकारी अवरोधों के बावजूद अनेक महत्त्वपूर्ण हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन जारी रहा।

रूस की क्रांति के फलस्वरूप भारत में साम्यवादी विचारधारा ने प्रवेश किया था। जिसने एक ओर भारतीय समाज और राजनीति को प्रभावित किया, वहीं दूसरी ओर भारतीय साहित्य को भी प्रभावित किया। भारतीय साहित्य जो अब तक जीवन की वास्तविकताओं से कोसों दूर कल्पनालोक में विचरण कर रहा था, उसमें जीवन की यथार्थ वास्तविकताओं का कोई स्थान नहीं था। परंतु, साम्यवादी प्रभाव के फलस्वरूप साहित्य में एक नई लेखन परंपरा का उदय हुआ जिसे प्रगतिवादी समाजवादी चेतना का नाम दिया गया। साहित्य लेखन की इस परंपरा ने एक ओर राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त किया, वहीं दूसरी ओर समाज के बहुसंख्यक शोषित वर्ग (मजदूर, किसान, महिलाओं आदि) के जीवन की वास्तविकताओं एवं समस्याओं की अभिव्यक्ति को महवत्त्पूर्ण स्थान दिया। इस दिशा में तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इस काल की 'जागरण' और 'हंस' ये दो महत्त्वपूर्ण पत्रिकाएँ थीं जिन्होंने प्रगतिशील साहित्य के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण मंच का कार्य किया।

प्रगतिवादी तत्त्वों का समर्थन

इस काल की पत्र–पत्रिकाओं ने भारत की औद्योगिक एवं आर्थिक दुर्दशा पर पर्याप्त प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि किस प्रकार अंग्रेजी सरकार भारतीय उद्योगों की बरबादी के लिए प्रयासरत है। वह इसके लिए किस–किस प्रकार के नियम–कानून बनाकर भारतीय उद्योगों को निरूत्साहित कर रही थी। उदाहरणार्थ इस काल की 'चाँद' पत्रिका ने अपने मई 1936 के अंक में भारतीय रेशम उद्योग की दुर्दशा के कारणों पर प्रकाश डालते हुए बताया कि इसके लिए सरकार की आयात नीति उत्तरदायी है। उसने लिखा– 'प्राचीन भारतीय व्यवसाय की कमर टूटी जा रही है और लाखों व्यक्ति जो इसमें लगे हुए हैं, भूखों मर रहे हैं। गतवर्ष बाहर से लगभग 33 लाख पौण्ड कच्चा रेशम और 12.11 लाख पौण्ड कता हुआ रेशम इस देश में आया, जबकि एक वर्ष पहले इनका परिमाण क्रमशः 20 लाख और 9 लाख पौण्ड ही था। यदि यही दशा बनी रही तो इस देश वालों के लिए इस व्यवसाय को कर सकना सर्वथा असम्भव हो जायेगा और हम एक बड़े व्यवसाय से सदा के लिए वंचित हो जाएँगे।'[7]

वहीं दूसरी ओर 'चाँद' के जुलाई 1936 के अंक में निर्धनता के कारणों में मुख्य कारण देश में चरखा के रिवाज का छूट जाना माना। इस संबंध में उसने लिखा– 'इस देश की निर्धनता के कारणों में मुख्य कारण चरखे का रिवाज छूट जाना है। अकेले बंगाल प्रांत में 15 करोड़ का महीन कपड़ा प्रति वर्ष विदेशों को भेजा जाता था। अपने यहाँ तो देशी पहिनते ही थे। पटने में 230426 स्त्रियाँ, शाहाबाद में 159500 और गोरखपुर में 175600 स्त्रियाँ चरखे पर सूत कातकर 25 लाख रूपया कमाती थीं। इसी प्रकार दीनाजपुर की स्त्रियाँ 9 लाख और पूर्णिया जिले की स्त्रियाँ 10 लाख रूपये सूत कात कर प्राप्त करती थीं।'[8]

समाज के शोषित वर्ग की समस्याओं की प्रधानता

'जागरण' के सम्पादकों में जहाँ श्री सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्र देव जैसे प्रसिद्ध समाजवादी राष्ट्रवादी नेताओं के साथ हिन्दी के प्रख्यात राष्ट्रवादी साहित्यकार मुंशी प्रेमचन्द थे, वहीं दूसरी ओर 'हंस' विशुद्ध रूप से प्रेमचन्द के सम्पादन में निकलने वाली पत्रिका थी। 'जागरण' ने जनवरी 1934 के अपने अंक के सम्पादकीय में साम्यवाद का समर्थन करते हुए लिखा– 'साम्यवाद का विरोध वही तो करता है जो दूसरों से ज्यादा सुख भोगना चाहता है, जो दूसरों को अपने अधीन रखना चाहता है। जो अपने को भी दूसरों के बराबर समझता है, जो अपने में कोई सुर्खाब का पर लगा हुआ नहीं देखता, जो समदर्शी है, उसे साम्यवाद से विरोध क्यों होने लगा।'[9]

इसी प्रकार 'हंस' के 'महाजनी सभ्यता' शीर्षक के सम्पादकीय लेख में मुंशी प्रेमचन्द ने समाजवादी व्यवस्था के वास्तविक आवृत्ति को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए उसकी विजय की घोषणा इन शब्दों में की– 'धन्य है वह सभ्यता जो मालदारी और व्यक्तिगत सम्पत्ति का अंत कर रही है, और जल्दी या देर से, दुनिया उसका पदानुसरण अवश्य करेगी। यह सभ्यता अमुक देश की समाज–रचना अथवा धर्म–मजहब से मेल नहीं खाती, या उस वातावरण के अनुकूल नहीं है– यह तर्क नितांत असंगत है। छोटी–मोटी बातों में अंतर हो सकता है, पर मूल स्वरूप की दृष्टि से सम्पूर्ण मानव जाति में कोई भेद नहीं। जो शासन–विधान और समाज व्यवस्था एक देश के लिए कल्याणकारी है, वह दूसरे देशों के लिए भी हितकर होगी। हाँ महाजनी सभ्यता और उसके गुरगे अपनी शक्ति भर उसका विरोध करेंगे पर जो सत्य है, एक दिन उसकी विजय होगी, और अवश्य होगी।'[10]

इस काल का एक अन्य पत्र 'विप्लव' भी था। इसके हर अंक में समाज के प्रत्येक वर्ग की समस्याओं का ब्यौरा रहता था। इसके अप्रैल 1939 के अंक में मजदूरों और किसानों की मेहनत किस प्रकार रूपये की शक्ल में पूँजीपतियों की थैलियों में जा कर जमा हो जाती है, इसका बखूबी चित्रण 'मार्क्सवाद की पाठशाला' लेख में हुआ है।[11] 'विप्लव' के इसी अंक में मुनीराम शर्मा की 'विप्लव' शीर्षक नामक कविता प्रकाशित हुई इसकी पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

'सदियों से अत्याचारों की मूक व्यथा है आज जागी।
विप्लव। तेरे परशु करों से शोषण पथ में आग लगी।
धुआँ घोर हो उठा व्योम में धूमकेतु से छाए हैं।
छली प्रपंची अन्तस्थल में आशंकाएँ लाए हैं।'[12]

मजदूरों और किसानों के शोषण विहीन संसार के उदय की बात कहते हुए 'नया हिन्दुस्तान' ने 17 सितम्बर 1939 के अंक में 'फासिज़्म का जनाजा बँध गया' नामक सम्पादकीय प्रकाशित किया जिसमें लिखा– 'पूँजीवाद और फासीवाद के विघटन से, उनकी जली हुई राख से एशिया और यूरोप में एक नए समाज, एक नए संसार का उदय होगा। मजदूरों का संसार, किसानों का संसार, दुनिया के शांति और तरक्की पसंद मेहनतकशों का संसार जिसमें न शोषण होगा, न अन्याय, न युद्ध का नरसंहार।'[13]

भारतीय समाज में स्त्रियाँ आदि काल से ही शोषित रही हैं। मध्य काल में उनकी स्थिति उत्तरोत्तर बिगड़ति गई, कुप्रथाओं ने उनके जीवन को नरकीय बना दिया था। आधुनिक काल में पुनर्जागरण के दौरान समाज एवं धर्म सुधारकों ने स्त्रियों दशा सुधारने के अनेक प्रयास किए, परंतु इन प्रयासों के बावजूद भी भारतीय नारियों की स्थिति में अधिक सुधार नहीं हो सका था। अतः इस काल के साहित्यकारों ने अपनी पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से उनकी स्थिति का चित्रण करते हुए उनकी दशा में सुधार के लिए प्रयास किए। इस काल की पत्र–पत्रिकाओं ने नारी–पुरूष समानता की बात कहते हुए उनके आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने की बात कही और इस संबंध में अनेक लेख प्रकाशित किए। 'विप्लव' ने जहाँ 'सतित्व अबला का या सबला का' शीर्षक लेख प्रकाशित करते हुए लिखा– 'यदि स्त्रियों को अपना अस्तित्व कायम रखना है और ऐसे अवसरों पर पद–पद पर अपमानित लांछित होने से बचना है और अपना जीवन सुखी, संतुष्ट और हरा–भरा बनाना है तो उन्हें व्यर्थ सामाजिकता का ढोंग छोड़कर आर्थिक पहलू से स्वतंत्र होने की कोशिश करनी चाहिए।'[14]

वहीं साम्यवादी मासिक पत्रिका 'क्रांति' ने 'स्त्रियों की आजादी और साम्यवाद' नामक लेख में लिखा– 'स्त्रियों को पुरूषों के बराबर ही हक देना और समाज में उनकी एक सी इज्जत कायम करना यदि कोई अपराध है, तो हम साम्यवादी अवश्य दोषी हैं। अपराधी तो वे हैं जो समाज के अधाई को दूसरे हिस्सों के बराबर नहीं मानते। समाज के भले के लिए दोनों की एक सी जरूरत है, दोनों में एक के नाकाबिल होने से समाज का अमंगल होता है और हमारी उन्नति में रूकावट होती है।'[15]

इसी प्रकार का एक अन्य लेख 'क्रांति' के अक्टूबर 1939 के अंक में श्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव का लेख प्रकाशित हुआ जिसमें स्त्रियों के उत्थान के लिए कथनी की अपेक्षा करनी पर बल दिया गया यथा– 'स्त्रियों की आजादी की समस्या केवल साम्यवाद के सिद्धांत बताने वाले, लेख लिखने या लेक्चर देने से तो हल नहीं हो सकती। उन्हें कार्य रूप में परिणत करने की आवश्यकता है। स्त्रियों से मौखिक सहानुभूति दिखाने का जमाना अब गया। आज आवश्यकता उन महानुभावों की है जो अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत करने का साहस कर सकते हैं, केवल सिद्धांतों से कोई कार्य पूरा नहीं हुआ।'[16]

'क्रांति' के इसी अंक में दामोदर स्वरूप सेठ का यह लेख 'क्रांति कौन चाहता है?' प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने क्रांति चाहने वाले लोगों के बारे में बताते हुए लिखा– 'तब्दीली वास्तव में वही चाहते हैं जिनके पास खोने को है ही नहीं जो दूसरों के पैरों के नीचे इस बेरहमी से कुचले गए हैं कि उन्हें अपनी जिन्दगी भार स्वरूप मालूम होती है और सत्ता या अधिकार की बात करना भी जिनके लिए जुर्म है; जिनके पेट में रोटी नहीं जिनके तन पर कपड़ा नदारद है और जो जीवन की हर आवश्यकता के लिए दिन रात तरसा करते हैं। इन्कलाब का आह्वान वही करते हैं।'[17]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 1934 से 1947 तक का काल भारतीय राष्ट्रीय चेतना में नवीन विचारधारा एवं नवीन जन राजनीति की जन्म एवं विकास का काल था जिसका प्रभाव भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर भी दिखाई देता है। इन परिवर्तित परिस्थितियों से तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं के संपादक एवं लेखक भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके थे। उन्होंने कृषक एवं मजदूरों की सामाजिक एवं आर्थिक असमानता का विरोध करते हुए साम्यवाद और समाजवादी व्यवस्था का पुरजोर समर्थन किया था। इसमें 'हंस' के 'महाजनी सभ्यता' शीर्षक सम्पादकीय लेख में मुंशी प्रेमचन्द ने समाजवादी व्यवस्था के वास्तविक स्वरूप को पाठकों के समक्ष रखा। इस भाँति 'जागरण', 'विप्लव', 'नया हिन्दुस्तान', 'क्रांति' आदि पत्रिकाओं में जहाँ फासीवाद और पूँजीवाद की बुराइयों और दोषों को बताया, वहीं दूसरी ओर निम्न वर्ग को इनसे मुक्ति का मार्ग भी बताया था। यह मार्ग था समाजवाद और साम्यवाद का। निम्न वर्ग के अतिरिक्त स्त्रियों के अधिकार और उन्हें समाज में पुरूषों के समान दर्जा देने की बात की सशक्त अभिव्यक्ति की गयी थी।

अस्तु गहराई से अध्ययन और विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि पत्र पत्रिकाओं में देशकाल की घटनाओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। चाहे वह राष्ट्रीय भावना हो, चाहे गरीब किसान–मजदूरों की आर्थिक विपन्नता हो, चाहे भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा हो आदि। विवेच्य युग की पत्रकारिता उतना ही परिपक्व व प्रखर थी जितना कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन। अतः भारतवर्ष में राष्ट्रीयता और पत्रकारिता एक–दूसरे के पर्याय हो चुके थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ. शिवकुमार मिश्रा, इतिहास तथा सिद्धान्त, मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन, भोपाल, 1973, पृ.492*

2. डॉ. हरिन्द्र मुखर्जी, प्रगतिशील आंदोलन का प्रारंभ, नया साहित्य, सितम्बर, 1957
3. डॉ. शिवकुमार मिश्र, पूर्वोक्त, पृ. 493
4. वही, पृ. 494
5. वही
6. डॉ. पुरूषोत्तम वाजपेयी, हिन्दी कथा साहित्य पर सोवियत क्रांति का प्रभाव, कानपुर, 1976,पृ. 168–169
7. रेशम के व्यवसाय की दुरावस्था, चाँद, वर्ष 14, खण्ड–2, संख्या 1, मई 1936, पृ. 105–106
8. प्राचीन भारत में स्त्रियों का कताई व्यवसाय, विद्याभूषण पं. मोहन शर्मा विशारद, चाँद, वर्ष 14,खण्ड–2, संख्या 3, जुलाई 1936, पृ. 285–286
9. जागरण, 28 जनवरी, 1934
10. हंस, प्रेमचन्द द्वारा लिखा गया अंतिम सम्पादकीय वक्तव्य, 1936
11. विप्लव, अप्रैल, 1939, पृ. 69
12. वही, पृ. 34
13. नया हिन्दुस्तान, 17 सितम्बर, 1939, पृ. 3
14. विप्लव, अप्रैल 1936, पृ. 40
15. अर्जुन अरोड़ा, स्त्रियों की आजादी और साम्यवाद, क्रांति, सितम्बर, 1939, पृ. 9
16. श्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव, स्त्रियों की आजादी और साम्यवाद, क्रांति, वही, पृ. 13
17. क्रांति, सितम्बर, 1939, पृ. 3